अंक : 1, मार्च 2019

LEISA INDIA

लीज़ा इण्डिया

विशेष हिन्दी संस्करण

लीज़ा इण्डिया

विशेष हिन्दी संस्करण
मार्च 2019, अंक 1

यह अंक लीज़ा इण्डिया टीम के साथ मिलकर जी०ई०ए०जी० द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है, जिसमें लीज़ा इण्डिया में प्रकाशित अंग्रेजी भाषा के कुछ मूल लेखों का हिन्दी में अनुवाद एवं संकलन है।

गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप
224, पुर्दिलपुर, एम०जी० कालेज रोड,
पोस्ट बाक्स 60, गोरखपुर- 273001
फोन : +91-551-2230004,
फैक्स : +91-551-2230005
ईमेल : geagindia@gmail.com
वेबसाइट : www.geagindia.org

ए.एम.ई. फाउण्डेशन
नं० 204, 100 फीट रिंग रोड, 3rd फेज़, 2nd ब्लाक,
3rd स्टेज, बनशंकरी, बैंग्लोर- 560085, भारत
फोन : +91-080-26699512,
+91-080-26699522
फैक्स :+91-080-26699410,
ईमेल : leisaindia@yahoo.co.in

लीज़ा इण्डिया
लीज़ा इण्डिया अंग्रेजी में प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका है, जो इलिया की सहभागिता से ए.एम.ई. फाउण्डेशन बैंग्लोर द्वारा प्रकाशित होती है।

मुख्य सम्पादक
के.वी.एस. प्रसाद, ए.एम.ई. फाउण्डेशन

प्रबन्ध सम्पादक
टी.एम.राधा., ए.एम.ई. फाउण्डेशन

अनुवाद समन्वय
अर्चना श्रीवास्तव, जी.ई.ए.जी.
वीणा, ए.एम.ई. फाउण्डेशन

तकनीकी सहयोग
विजय कुमार पाण्डेय

प्रबन्धन
रूक्मिणी जी.जी., ए.एम.ई. फाउण्डेशन

लेआउट एवं टाईपसेटिंग
राजकान्ती गुप्ता, जी.ई.ए.जी.

छपाई
कस्तूरी ऑफसेट, गोरखपुर

आवरण फोटो
जी०ई०ए०जी०

लीज़ा पत्रिका के अन्य सम्पादन
लैटिन, अमेरिकन, पश्चिमी अफ्रीकन एवं ब्राज़ीलियन संस्करण

लीज़ा इण्डिया पत्रिका के अन्य क्षेत्रीय सम्पादन
तमिल, कन्नड़, उड़िया, तेलगू, मराठी एवं पंजाबी

सम्पादक की ओर से लेखों में प्रकाशित जानकारी के प्रति पूरी सावधानी बरती गई है। फिर भी दी गई जानकारी से सम्बन्धित किसी भी त्रुटि की जिम्मेदारी उस लेख के लेखक की होगी।

माइजेरियर के सहयोग एवं जी०ई०ए०जी० के समन्वयन में ए०एम०ई० द्वारा प्रकाशित

लीज़ा

कम बाहरी लागत एवं स्थायी कृषि पर आधारित लीज़ा उन सभी किसानों के लिए एक तकनीक और सामाजिक विकल्प है, जो पर्यावरण सम्मत विधि से अपनी उपज व आय बढ़ाना चाहते हैं क्योंकि लीज़ा के अन्तर्गत मुख्यतः स्थानीय संसाधनों और प्राकृतिक तरीकों को अपनाया जाता है और आवश्यकतानुसार ही बाह्य संसाधनों का सुरक्षित उपयोग किया जाता है।

लीज़ा पारम्परिक और वैज्ञानिक ज्ञान का संयोग है, जो विकास के लिए आवश्यक वातावरण तैयार करता है। यह भी मुख्य है कि इसके द्वारा किसानों की क्षमता को विभिन्न तकनीकों से मजबूत किया जाता है और खेती को बदलती जरूरतों और स्थितियों के अनुकूल बनाया जाता है, साथ ही उन महिला एवं पुरुष किसानों व समुदायों का सशक्तिकरण होता है, जो अपने ज्ञान, तरीकों, मूल्यों, संस्कृति और संस्थानों के आधार पर अपना भविष्य बनाना चाहते हैं।

ए.एम.ई. फाउण्डेशन, डक्कन के अर्द्धशुष्क क्षेत्र के लघु सीमान्त किसानों के बीच विकास एजेन्सियों के जुड़ाव, अनुभव के प्रसार, ज्ञानवर्द्धन एवं विभिन्न कृषि विकल्पों की उत्पत्ति द्वारा पर्यावरणीय कृषि को प्रोत्साहित करता है। यह कम लागत प्राकृतिक संसाधन प्रबन्धन के लिए पारम्परिक ज्ञान व नवीन तकनीकों के सम्मिश्रण से आजीविका स्थाईत्व को बढ़ावा देता है।

ए.एम.ई. फाउण्डेशन गांव में इच्छुक किसानों के समूह को वैकल्पिक कृषि पद्धति तैयार करने व अपनाने में सक्षम बनाने हेतु उनके साथ जुड़कर सघन रूप से काम कर रही है। यह स्थान अभ्यासकर्ताओं व प्रोत्साहकों के लिए उनकी देखने–समझने की क्षमता में वृद्धि करने हेतु सीखने की परिस्थिति के तौर पर है। इससे जुड़ी स्वयं सेवी संस्थाओं और उनके नेटवर्क को जानने के लिए इसकी वेबसाईट देखें–(www.amefound.org)

गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप एक स्वैच्छिक संगठन है, जो स्थाई विकास और पर्यावरण से जुड़े मुद्दों पर सन् 1975 से काम कर रहा है। संस्था लघु एवं सीमान्त किसानों, आजीविका से जुड़े सवालों, पर्यावरणीय संतुलन, लैंगिक समानता तथा सहभागी प्रयास के सिद्धान्तों पर सफलतापूर्वक कार्य कर रही है। संस्था ने अपने 40 साल के लम्बे सफर के दौरान अनेक मूल्यांकनों, अध्ययनों तथा महत्वपूर्ण शोधों को संचालित किया है। इसके अलावा अनेक संस्थाओं, महिला किसानों तथा सरकारी विभागों का आजीविका और स्थाई विकास से सम्बन्धित मुद्दों पर क्षमतावर्धन भी किया है। आज जी0ई0ए0जी0 ने स्थाई कृषि, सहभागी प्रयास तथा जेण्डर जैसे विषयों पर पूरे उत्तर भारत में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। इसकी वेबसाईट देखें–(www.geagindia.org)

माइजेरियर वर्ष 1958 में स्थापित जर्मन कैथोलिक बिशप की संस्था है, जिसका गठन विकासात्मक सहयोग के लिए हुआ था। पिछले 50 वर्षों से माइजेरियर अफ्रीका, एशिया और लातिन अमेरिका में गरीबी के विरूद्ध लड़ने के लिए प्रतिबद्ध है। जाति, धर्म व लिंग भेद से परे किसी भी मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यह हमेशा तत्पर है। माइजेरियर गरीबी और हानियों के विरूद्ध पहल करने के लिए प्रेरित करने में विश्वास रखता है। यह अपने स्थानीय सहयोगियों, चर्च आधारित संगठनों, गैर सरकारी संगठनों, सामाजिक आन्दोलनों और शोध संस्थानों के साथ काम करने को प्राथमिकता देता है। लाभार्थियों और सहयोगी संस्थाओं को एक साथ लेकर यह स्थानीय विकासात्मक क्रियाओं को साकार करने और परियोजनाओं को क्रियान्वित करने में सहयोग करता है। यह जानने के लिए कि स्थिर चुनौतियों की प्रतिक्रिया में माइजेरियर किस प्रकार अपनी सहयोगी संस्थाओं के साथ काम कर रहा है। इसकी वेबसाइट देखें (www.misereor.de; www.misereor.org)

पुराने व नये में संतुलन

अमनदीप सिंह एवं प्रणव कुमार

प्रकृति के साथ सामंजस्य बनाकर जीवन जीना स्थाई तरीके से जीने का एक पक्का तरीका है। भारत के उत्तरी भाग में रहने वाले गुज्जर आदिवासियों ने पारम्परिक संस्कृतियों एवं प्रणालियों के साथ ही नवीनता को भी अपनाया है, जिसके परिणामस्वरूप पारिस्थितिकी प्रणालियों एवं आजीविका में स्थाईत्व आया है।

पशुधन उत्पादन में जेण्डर और नीतियां : मुद्दे और अवसर

एम. मंजुला, आर. रंगालक्ष्मी व के. थचिनामुर्थी

''उत्पादकता और प्रभाविता में वृद्धि'' से हटकर ''समावेशीकरण और समानता'' के सन्दर्भ में लोगों की सोच बदलने से पशुधन क्षेत्र पर लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ है। जब इसे प्रभावी रूप से क्रियान्वित किया जाये तो इसे गरीबी घटाने और विकास को बढ़ावा देने के एक माध्यम के तौर पर देखा जा सकता है।

पशुधन को एकीकृत करते हुए कृषि–पारिस्थितिकी एवं आय को सुरक्षित करना

के. सुरेश कन्ना

अक्सर प्राकृतिक पारिस्थितिकी तरीकों को अपना कर किये जाने वाले अधिकांश कार्यों के परिणाम स्थाई होते हैं। कुछ साधारण से अभ्यास जैसे– कृषि एवं पशुधन का एकीकरण दोनों गतिविधियों के लिए लाभकारी होता है। यह लाभ उत्पादन वृद्धि, लागत में कमी, उन्नत पारिवारिक पोषण और बेहतर कृषि पारिस्थितिकी के रूप में प्रदर्शित होता है।

जलवायु परिवर्तन के सापेक्ष एकीकृत खेती : एक कारगर उपाय

अर्चना श्रीवास्तव एवं अजय सिंह

बदलती जलवायुविक परिस्थितियों का सबसे ज्यादा प्रभाव छोटे, मझोले किसानों पर ही पड़ता है, क्योंकि एक तो इनके पास खेती की जमीनें कम होती हैं, दूसरे इनके पास संसाधन भी कम होते हैं, जिससे इनकी निर्भरता एकल खेती पर अधिक होती है। उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जनपद के लघु, सीमान्त किसानों ने इन समस्याओं को ध्यान में रखते हुए जलवायु परिवर्तन से निपटने हेतु एकीकृत खेती मॉडल को अपनाया और उससे लाभान्वित हुए।

अनुक्रमणिका

विशेष हिन्दी संस्करण, मार्च 2019

5 पुराने व नये में संतुलन
अमनदीप सिंह एवं प्रणव कुमार

8 पशुधन उत्पादन में जेण्डर और नीतियां : मुद्दे और अवसर
एम. मंजुला, आर. रंगालक्ष्मी व के. थचिनामुर्थी पशुधन

11 पशुधन को एकीकृत करते हुए कृषि–पारिस्थितिकी एवं आय को सुरक्षित करना
के. सुरेश कन्ना

14 जलवायु परिवर्तन के सापेक्ष एकीकृत खेती : एक कामगर उपाय
अर्चना श्रीवास्तव एवं अजय सिंह

17 खाद्य सम्प्रभुता की ओर एक आत्मनिर्भर पथ
कुलास्वामी जगन्नाथ जेना

खाद्य सम्प्रभुता की ओर एक आत्मनिर्भर पथ

कुलास्वामी जगन्नाथ जेना

ओडिशा के रायगढ़ एवं कालाहांडी जिले के आदिवासी किसान खाद्य उत्पादन के कृषि–पारिस्थितिकी सम्बन्धी मॉडलों को अपनाकर अपने खेतों एवं अपनी थाली में जैव विविधता को प्रोत्साहित कर रहे हैं। अपनी स्वयं की खाद्य प्रणाली को परिभाषित करते हुए वे आत्मनिर्भरता की राह पर चल रहे हैं।

यह अंक...

सम्पादकीय,

विविधताओं को समेटे लीज़ा इण्डिया (हिन्दी) का मार्च, 2019 का अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है। पिछले एक दशक से जलवायु परिवर्तन विश्व की ज्वलन्त समस्याओं में शीर्ष पर बना हुआ है एवं उसके परिणामस्वरूप आपदाओं की प्रवृत्ति में हो रहे बदलाव के इस दौर में विशेषकर छोटे मझोले किसानों के समक्ष खेती एवं आजीविका के स्थाईत्व का संकट दिनोंदिन गहरा रहा है। हालांकि इस संकट से निपटने हेतु किसानों ने स्थानीय व पारम्परिक ज्ञान के साथ आधुनिक ज्ञान व विज्ञान का समावेश करते हुए विभिन्न गतिविधियों को अपनाया है, परन्तु अभी भी उन गतिविधियों का प्रसार बड़े पैमाने पर न होने के कारण व्यापक परिणाम नहीं दिखते। लीज़ा इण्डिया प्रमुख छः भाषाओं– अंग्रेजी, हिन्दी, तमिल, कन्नड़, उड़िया, तेलगू, मराठी एवं पंजाबी के माध्यम से इन प्रयासों / अनुभवों / गतिविधियों को देश एवं विदेश स्तर पर प्रसारित करने का कार्य कर रही है।

अमनदीप सिंह एवं प्रणव कुमार द्वारा लिखित ''पुराने व नये में संतुलन'' पत्रिका का पहला लेख है। इस लेख के माध्यम से लेखकद्वय ने घुमन्तू आदिवासी समुदाय गुज्जर की प्रकृति से निकटता, पारिस्थितिकी संरक्षण हेतु उनके द्वारा किये जा रहे प्रयास एवं अपने देशज ज्ञान के साथ नवीन ज्ञान को समावेशित कर आजीविका स्थाईत्व की दिशा में किये जा रहे प्रयासों को दर्शाया है। लेख में यह भी दर्शाया गया है कि मुख्य रूप से पशुपालन पर आधारित ये गुज्जर समुदाय उसके माध्यम से अपनी आजीविका को किस प्रकार सुरक्षित एवं संरक्षित कर रहे हैं। पत्रिका के दूसरे लेख ''पशुधन उत्पादन में जेण्डर और नीतियां'' मे लेखकगण एम. मंजुला, आर. रंगालक्ष्मी व के. थचिनामुर्थी ने पशुधन पर अभी तक उपलब्ध नीतियों एवं कार्यक्रमों का विश्लेषण कर यह बताने का प्रयास किया है कि राष्ट्रीय आय वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले पशुधन पालन में महिलाओं की मुख्य भूमिका होती है। बावजूद इसके उन्हें कोई महत्व नहीं मिलता। आज भी महिलाएं मात्र कामगार की भूमिका में होती हैं, पशुओं की बिक्री व उससे प्राप्त आय पर नियंत्रण ये दो कार्य उनके कार्यक्षेत्र में नहीं आते। इन पर आज भी पुरूषों का वर्चस्व है व नीतियों में भी जेण्डर की दृष्टि से स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया है, जबकि यह कदम गरीबी घटाने और विकास को बढ़ावा देने का एक सशक्त माध्यम हो सकता है।

तीसरे पायदान पर के. सुरेश कन्ना द्वारा लिखित लेख ''पशुधन को एकीकृत करते हुए कृषि–पारिस्थितिकी एवं आय को सुरक्षित करना'' है। इस लेख में लेखक ने इस बात पर चिन्ता व्यक्त की है कि पशुधन हमारी खेती, आजीविका व जीवन के स्थाईत्व का एक महत्वपूर्ण अंग होते हुए भी इनके ऊपर राष्ट्र अथवा राज्य स्तर पर उपयुक्त नीतियों का अभाव है। जबकि आज आवश्यकता इस बात की है कि इन्हें जैविक खेती के एक महत्वपूर्ण संसाधन के तौर पर मान्यता देते हुए उपयुक्त व तर्कसंगत नीतियां व कार्यक्रम निरूपण किया जाये। इसी कड़ी को आगे बढ़ाते हुए चौथे लेख ''जलवायु परिवर्तन के सापेक्ष एकीकृत खेती : एक कारगर उपाय'' में अर्चना श्रीवास्तव एवं अजय कुमार सिंह ने गोरखपुर, उत्तर प्रदेश के झंगहा गाँव के एक ऐसे किसान की कहानी को प्रस्तुत किया है, जिसने खेती एवं उसके विविध उपतंत्रों– पशुपालन, गृहवाटिका, वानिकी, उद्यान आदि को एकीकृत करते हुए एक तरफ तो अपनी आजीविका एवं अपने परिवार की खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित किया है तो दूसरी तरफ जलवायु परिवर्तन के कुप्रभावों से निपटने में भी सफलता पाई है।

पाँचवे व अन्तिम लेख ''खाद्य सम्प्रभुता की ओर एक आत्मनिर्भर पथ'' में कुलास्वामी जगन्नाथ जेना ने ओडिशा के आदिवासी किसानों द्वारा विभिन्न कृषि–पारिस्थितिकी मॉडलों को अपनाकर खेतों व थाली में विविधता को बढ़ाने का वर्णन किया है। इस लेख में यह बताया गया है कि स्थान विशेष के हिसाब से गतिविधियों का क्रियान्वयन सामुदायिक संगठनों के माध्यम से करना एक स्थाई व आत्मनिर्भर पथ हो सकता है, जो छोटे व मझोले तथा महिला किसानों के लिए अधिक कारगर सिद्ध हो सकता है।

अन्त में पत्रिका के अन्तर्गत शामिल लेखों एवं अनुभवों की उपयोगिता एवं महत्ता पर आपके बहुमूल्य सुझावों की प्रतीक्षा रहेगी।

• **सम्पादक मण्डल**

पुराने व नये में संतुलन

अमनदीप सिंह एवं प्रणव कुमार

प्रकृति के साथ सामंजस्य बनाकर जीवन निर्वाह करना स्थाई एवं सुविधायुक्त तरीका है। भारत के उत्तरी भाग में रहने वाले गुज्जर आदिवासियों ने पारम्परिक संस्कृतियों एवं प्रणालियों के साथ ही आधुनिकता को भी अपनाया है, जिसके परिणामस्वरूप पारिस्थितिकी प्रणालियों एवं आजीविका में स्थाईत्व आया है।

लम्बे, तगड़े, पगड़ी और तहमद पहने हुए, लाल रंग से रंगी हुई लम्बी दाढ़ी, गोजरी में बात–चीत करते हुए, मक्खन में डुबाकर मक्के व बाजरे की रोटी खाते हुए लोग, मिट्टी और विशेष प्रकार की घासों से बने उनके घर, अपनी आमदनी के प्रमुख स्रोत अपने जानवरों के साथ प्यार और करूणा, जिनके पाँवों के नीचे जमीन और सर पर आसमान – ऐसे होते हैं, प्रकृति के निकट रहने वाले गुज्जर।

गुज्जर घूमन्तु आदिवासी होते हैं, जिनकी सांस्कृतिक विरासत बहुत ही समृद्ध होती है। उनकी अपनी स्वयं की वेष–भूषा, परम्पराएं तथा जीने की आदतें, कला एवं शिल्प तथा बहुत ही विशिष्ट भोजन पद्धति होती हैं, जो एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में रहने वाले लोगों की अलग–अलग होती हैं। बकरवालों के साथ गुज्जर जम्मू एवं कश्मीर का तीसरा सबसे बड़ा समुदाय है। भारत की जनगणना, 2001 के अनुसार पूरे राज्य की जनसंख्या का 7.5 प्रतिशत जनसंख्या गुज्जरों की है। व्यवसायिक रूप से देखा जाये तो गुज्जर समुदाय के 62 प्रतिशत लोग कृषि और पशुपालन का काम करते हैं, जबकि 2.8 प्रतिशत घरेलू कामगार और 28 प्रतिशत गुज्जर अन्य क्षेत्रों में शामिल हैं। इनके द्वारा की जाने वाली आर्थिक गतिविधियों का प्रमुख क्षेत्र डेयरी उद्योग है। घूमन्तू लोगों को मुख्य तौर पर पशुधन पालन के लिए जाना जाता है। इस बात को आँकड़े भी पुष्ट करते हैं। आँकड़ों के अनुसार मात्र 0.85 प्रतिशत जनसंख्या ही शहरी है और शेष जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है जो स्थाई पशुधन उत्पादन पर पनपती है।

स्कूल यूनीफार्म में तैयार गुज्जर बच्चे

फोटो : लेखक

खाद्य आदतें

चूँकि गुज्जर एकांत परिस्थितियों में रहते हैं, इसलिए उनके रहन–सहन का तौर–तरीका, भोजन एवं खाद्य आदतें प्रथा जीवन के विभिन्न पहलुओं के प्रति उनका दृष्टिकोण गैर आदिवासी लोगों की तुलना में भिन्न हो सकता है। यह भिन्नता उनकी आहार की आदतों में परिलक्षित होती है। बदलती कृषिगत प्रणालियों के कारण, बहुत से समुदायों की फसल प्रणालियों तथा खाद्य आदतों में परिवर्तन हुए हैं और गुज्जर समुदाय में भी इस परिवर्तन को देखा गया।

अनाजों, गेंहूं और मक्का के अतिरिक्त वे अपने मुख्य भोजन के लिए अधिकाँशतः दूध से बने उत्पादों पर निर्भर करते हैं। मक्की की रोटी, गन्हर/सरसों का साग, लस्सी, कलारी, करन आदि गुज्जरों के प्रिय व्यंजन हैं। यह आश्चर्यजनक है कि अधिकाँश गुज्जर शाकाहारी होते हैं।

यद्यपि छोटे दुकानदारों को हटाकर बाजार में नये उत्पादों और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की बाढ़ सी आ गयी है, फिर भी जम्मू एवं कश्मीर की स्थानीय जनजातियां इस प्रवृत्ति से बहुत कम चिन्तित हैं। वे अभी भी कुछ दशकों पहले जैसे परिस्थितियों पर ही फल–फूल रही हैं। उदाहरणस्वरूप, अभी भी गुज्जर लोग ''नून चा'' अथवा नमक वाली चाय को बेहद पसन्द करते हैं और उनके आहार में मीठी चाय के बाद यह चाय नियमित रूप से शामिल है। इस चाय के बिना उनका दिन पूरा ही नहीं होता है। ''नून चा'' जम्मू एवं कश्मीर में पायी जाने वाली कुछ स्थानीय औषधियों का मिश्रण होता है। उनके घूमन्तु जीवन एवं बाजार में स्वयं को प्रस्तुत करने के प्रति उदासीनता के कारण वे अपने पास उपलब्ध संसाधनों एवं अपने द्वारा उत्पादित उत्पादों में ही संतुष्ट एवं आत्मनिर्भर रहते हैं। पहाड़ी क्षेत्रों पर रहने की उनकी एकांत जीवन शैली ने उन्हें प्रकृति के और निकट रहने एवं बसने हेतु प्रेरित किया है।

पारिस्थितिकी की रक्षा करना

इस समुदाय द्वारा पारिस्थितिकी के संरक्षण के लिए विभिन्न प्रयास किये गये हैं। उन्होंने स्वयं के भोजन एवं पशुओं के चारे हेतु घने जंगलों व ऊंची जमीनों का प्रयोग

> गुज्जरों की जीवनशैली की तरह ही उनकी खाद्य आदतें बिलकुल भिन्न होती हैं, जो उन्हें एक विशिष्ट और अद्वितीय जनजाति बनाती हैं और उन्हें एक खाद्य संप्रभु जनजाति के तौर पर वर्गीकृत होना चाहिए।

फोटो : लेखक

पशु स्वास्थ्य उन्नत करने हेतु मिनरल मिश्रण के उपयोग को किसानों को समझाते हुए डॉ0 प्रणव कुमार

फोटो : लेखक

बेहतर पशुपालन अभ्यासों को सीखने हेतु उत्सुक किसान

किया साथ ही जंगल के साथ सामंजस्य बनाते हुए खाद रूपी भोजन की उपलब्धता भी सुनिश्चित की है। इस प्रकार ये जंगलों के साथ संतुलन स्थापित करते हुए रहते हैं। राज्य के महत्वपूर्ण वन क्षेत्रों का पता लगाने, उनका चिन्हीकरण करने और वनों पर से अवैध कब्ज़ा हटाने में गुज्जरों ने राज्य वन विभाग की काफी सहायता की है। उन्होंने जंगलों में पेड़ों की अत्यधिक कटाई के ऊपर विभाग का ध्यान आकर्षित किया और उनके संरक्षण के प्रयासों में भी सहायता की। इसके अलावा, वे जंगलों में रहने योग्य महत्वपूर्ण स्थानों तथा मूल्यवान वनोत्पादों की खोज करने में भी पथ–प्रदर्शक की भूमिका निभाते हैं।

पारिस्थितिकी से जुड़ी आजीविका

मक्का पहाड़ों एवं पहाड़ी क्षेत्रों में उगाया जाता है और यह इस क्षेत्र की एक उष्णकटिबन्धीय फसल है। मक्का की खेती उन पहाड़ी क्षेत्रों में की जाती है, जहाँ पर बहुसंख्य समुदाय बसे हुए हैं। मक्का इनके मुख्य भोजन के तौर पर है, जो विशेषकर जाड़े के दिनों में शरीर को गर्मी व शक्ति प्रदान भी प्रदान करती हैं। अन्य फसलों जैसे – चावल, गेंहू, इत्यादि में सिंचाई की आवश्यकता होने के कारण

:

इनकी खेती नहीं की जाती है। इसलिए इनके पास केवल मक्का उगाने का ही एक विकल्प बचता है।

गुज्जर ऊँची पहाड़ियों पर उच्च पोषण युक्त मक्के की खेती करते हैं और अपने भोजन के लिए स्थानीय वनस्पतियों पर निर्भर करते हैं, जिससे क्षेत्र के पेड़–पौधों में कोई बदलाव नहीं आया है। इसके अलावा, मक्के की पत्तियों को जानवरों को चारे के रूप में खिलाते हैं। प्रवासी जीवन शैली ने उन्हें इतना सक्षम बनाया है कि गर्मियों के दौरान वे अपने जानवरों को लेकर घास चराने हेतु ऊँची पहाड़ियों पर चले जाते हैं और सर्दियों के दौरान भोजन की तलाश में मैदानी क्षेत्रों में वापस आ जाते हैं। वे सर्दियों के दौरान मैदानी क्षेत्रों में कीचड़ और फूस से अस्थाई घर बना लेते हैं, जिसे ''कुलाज़'' कहते हैं और चारे पर अपने पशुओं को पालते हैं। उनके जानवरों द्वारा उत्सर्जित उत्कृष्ट खाद से जमीन की उर्वरा शक्ति में वृद्धि होती है और रसायनिक उर्वरकों के बहुत कम उपयोग से ही अच्छा लाभ प्राप्त होता है। मैदानी क्षेत्रों में, जनता इन खादों को पाने के लिए गुज्जरों को अपने आस–पास ही बसाती है। जब वे ऊँचे पहाड़ी क्षेत्रों पर वापस लौटते हैं तो अपने जानवरों को चराई हेतु प्राकृतिक चारागाहों में खुला छोड़ देते हैं और जानवरों से प्राप्त अपशिष्टों से वहां की जमीन उर्वर होती रहती है, जिससे प्रकृति में पोषण का संतुलन बना रहता है। वे मैदानी और चारागाह क्षेत्रों में पूर्ण सामंजस्य स्थापित करते हुए सहजीवी सम्बन्ध के आधार पर रहते हैं।

गुज्जर पशुधन विकास के लिए जिम्मेदार प्राथमिक समूह हैं, क्योंकि अधिकतर पशुपालन और उत्पादन का कार्य यही करते हैं। गुज्जर समुदाय में पशुधन सम्मान का प्रतीक होते हैं। जिस परिवार के पास जितनी अधिक संख्या में जानवर होते हैं, वह परिवार उतना ही अधिक समृद्ध व सम्माननीय होता है। इसके अलावा भैंसों एवं उनके दूध को खरीदना व बेचना गुज्जरों की एक और प्रमुख गतिविधि है। गुज्जर गायों की तुलना में भैंसों को पालना अधिक पसन्द करते हैं, क्योंकि इन जानवरों की प्रकृति कठोर होती है, वे विपरीत परिस्थितियों को सहने की क्षमता रखते हैं और उनके दूध में अधिक वसा होती है। गुज्जर भैंसों के दूध से दही, घी, मक्खन, लस्सी, पनीर, कलाडी आदि अनेक प्रकार के मूल्य सवंर्धित उत्पाद तैयार कर बेचते हैं और इस प्रकार वे अधिक लाभ कमाते हैं व आत्मनिर्भर बने रहते हैं।

पशुधन उत्पादों, विशेषकर दूध और दूध से बने उत्पादों की

फोटो : लेखक

बेहतर पशु स्वास्थ्य एवं उत्पादन पर गुज्जरों को चर्चा करते छात्र

बिक्री गुज्जरों की आमदनी का मुख्य जरिया है। उनके पास कम से कम 30–40 पशुओं के होने की स्थिति में उत्पादन और अर्थव्यवस्था का चक्र स्थाई रूप से चलता रहता है। दूध का उपभोग वे स्वयं करते हैं और दूध से उत्पाद तैयार कर बेचते हैं। मूल्य सवंर्धित उत्पादों को तैयार कर वे सीधे घरों में ले जाकर बेचते हैं। बहुत बार तो लोग घी, दही, मक्खन, पनीर, कलाडी आदि खरीदने के लिए स्वयं भी गुज्जरों के पास जाते हैं। हालाँकि इस समय दुग्ध व्यवसाय में बहुत से बड़े–बड़े नाम जैसे मदर डेयरी, अमूल, वेरका आदि अपने बहुत से मूल्य सवंर्धित उत्पादों को बाजार में उतार रहे हैं, फिर भी क्षेत्रीय स्तर पर अभी दूध एवं उससे तैयार उत्पादों की शुद्धता के लिए लोग गुज्जरों के ऊपर ही विश्वास करते हैं।

गुज्जर अपने परम्परागत ज्ञान एवं जानकारियों की रक्षा करने के साथ ही नवीन वैज्ञानिक जानकारियों को जानने के प्रति भी उत्सुक रहते हैं। इस दिशा में जम्मू एवं कश्मीर के पशुपालन विभाग, अन्य सम्बन्धित विभागों, कृषि विज्ञान केन्द्रों अथवा प्रक्षेत्र विज्ञान केन्द्रों, कृषि विज्ञान एवं तकनीक शेर–ए–कश्मीर विश्वविद्यालय, जम्मू एवं कश्मीर आदि के माध्यम से स्वच्छ दूध उत्पादन, पशु स्वास्थ्य, व्यक्तिगत एवं पशु स्वच्छता, पशु पोषण आदि विषयों पर गुज्जरों को प्रशिक्षित किया गया। उन्हें अपने पशुओं के लिए प्रजनन तकनीकों एवं बेहतर पुनर्उत्पादन के उपयोग पर भी प्रशिक्षित किया गया है।

गुज्जरों का यह व्यवसाय बड़े व्यापारियों/उद्योगपतियों से प्रभावित नहीं है और ना ही उनके उत्पादों की बिक्री पर कोई प्रभाव पड़ा है। वे पूर्व की भांति लाभ कमा रहे हैं। एक परिवार 100 लीटर दूध उत्पादित करता है और स्थानीय बाजार में बहुत से ब्राण्डों के उत्पाद होने के बावजूद उसके

शेष पृष्ठ 10 पर.....

पशुधन उत्पादन में जेण्डर और नीतियां : मुद्दे और अवसर

एम. मंजुला, आर. रंगालक्ष्मी व के. थचिनामुर्थी

''उत्पादकता और क्षमता में वृद्धि'' से हटकर ''समावेशीकरण और समानता'' के सन्दर्भ में लोगों की सोच बदलने से पशुधन क्षेत्र पर लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ है। इसे प्रभावी रूप से क्रियान्वित करते हुए इसके माध्यम से गरीबी घटाने और विकास को बढ़ावा देने का कार्य बखूबी किया जा सकता है।

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए पशुधन राष्ट्रीय आय और विदेशी मुद्रा अर्जित करने में योगदान दे रहे हैं। कुल 512 मिलियन पशुधन की संख्या वाले इस क्षेत्र का वर्तमान मूल्य पर देश की सकल घरेलू उत्पाद में 4.11 प्रतिशत का योगदान है जबकि कृषि, मत्स्य पालन और वानिकी क्षेत्रों का मूल्य निरन्तर बढ़ने के बावजूद इनका योगदान 23 प्रतिशत ही है। उच्च कीमत वाले पशुधन उत्पादों जैसे – दूध, मांस एवं अण्डा की मांग में 2020 तक तीन से चार गुना की वृद्धि होने की संभावना के चलते इस क्षेत्र के विस्तार और विकास के अवसर अधिक हैं।

पशुधन महिलाओं की आजीविका और परिवार की खाद्य सुरक्षा में सहयोग देने के लिए एक महत्वपूर्ण गैर भूमि उत्पादक सम्पत्ति के तौर पर होते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में 70 प्रतिशत से अधिक पशुधन छोटे, मझोले किसानों और भूमिहीन मजूदरों के स्वामित्व में होते हैं। एनएसएसओ (2014) के आँकड़े यह प्रदर्शित करते हैं कि कृषि में लगे कुल ग्रामीणों में से 3.5 प्रतिशत ग्रामीण पशुधन उत्पादन के कार्यों में संलग्न हैं। कृषि सम्बन्धी गतिविधियों में महिला श्रमिकों की पशुधन उत्पादन में सबसे बड़ी हिस्सेदारी है। कुल ग्रामीण महिला श्रमिकों का 8.8 प्रतिशत तथा कुल ग्रामीण पुरूष श्रमिकों का 1.8 प्रतिशत पशुधन उत्पादन के कार्यों में संलग्न हैं। पशुधन उत्पादन के कार्यों में संलग्न पुरूष श्रमिकों की तुलना में महिला श्रमिकों की संख्या काफी अधिक है। पशुधन उत्पादन में स्वरोजगार में शामिल 14.7 प्रतिशत महिला श्रमिकों की तुलना में स्व–रोजगारी पुरूष श्रमिकों की संख्या मात्र 2.9 प्रतिशत ही है, जो यह दर्शाता है कि फसल की कटाई के बाद पशुधन उत्पादन ग्रामीण महिलाओं के लिए दूसरा सबसे बड़ा उद्यम है। सामाजिक–आर्थिक और राजनीतिक स्थितियां बदलने के सन्दर्भ में अकृषित (गैर कृषि) रोजगार की तरफ पलायन करने वाले पुरूषों की संख्या में वृद्धि हो रही है और अन्ततः महिलाओं को ही पशुधन के साथ–साथ खेती को भी प्रबन्धित करना पड़ रहा है।

पशुपालन के क्षेत्र में प्रबन्धन, श्रम, ज्ञान और स्वामित्व के सन्दर्भ में महिलाओं व पुरूषों की भूमिका के बीच विभिन्नता होती है। इसलिए पुरूषों एवं महिलाओं की जानकारियों व विशिष्ट भूमिकाओं में उनकी संलग्नता भी अलग–अलग होती है, महिलाएं व पुरूष अलग–अलग प्रकार के पशुओं को पालते हैं और उत्पादों पर उनके अधिकार एवं नियंत्रण भी भिन्न–भिन्न होते हैं। सामान्यतया महिलाएं छोटे पशुओं जैसे – बकरी, मुर्गी, सुअर पालती हैं और उनको बेचने का निर्णय भी वही लेती हैं व बिक्री प्रक्रिया पूरी करने का अधिकार उन्हीं के पास होता है। प्रबन्धन और उत्पादन में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होने के बावजूद, उनके योगदान को कमतर करके आँका गया और राष्ट्रीय नीतियों एवं योजनाओं में उनको कोई मान्यता नहीं दी गयी है। खेती में उनके योगदान को देखते हुए नीतियों एवं योजनाओं में उन्हें मान्यता दिलाने हेतु किये जाने वाले शोध एवं अध्ययनों की तुलना में पशुधन पालन में महिलाओं की भूमिका एवं योगदान के ऊपर शोध एवं अध्ययन भी बहुत कम किये गये हैं। खाद्य कृषि संगठन (एफ.ए. ओ.) की रिपोर्ट में यह कहा गया है कि यदि महिलाओं को भी पुरूषों के समान संसाधनों की उपलब्धता कराई जाये तो उत्पादकता में 10–30 प्रतिशत की तथा उत्पाद में 4 प्रतिशत की वृद्धि होगी। शोध, विकास एवं नीतियों के लिए सामग्री उपलब्ध कराने हेतु

प्रबन्धन और उत्पादन में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होने के बावजूद, उनके योगदान को कमतर करके आंका गया और राष्ट्रीय नीतियों एवं योजनाओं में उनको कोई मान्यता नहीं दी गयी है।

जेण्डर से सम्बन्धित मुद्दों को विशिष्ट सन्दर्भ में समझने की आवश्यकता है।

उत्पादन के साधनों तक पहुँच एवं उन पर नियंत्रण, उत्पादक संसाधन जैसे – भूमि एवं जल और सेवाएं जैसे– ऋण, बीमा, सूचना, बाजार आदि पशुधन क्षेत्र से सम्बन्धित कुछ प्रमुख मुद्दे हैं, जिन पर ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है। दुग्ध सहकारी समितियों की सदस्यता पद्धति पशुधन क्षेत्र के लिए बनी नीतियों में महिलाओं की कम सदस्यता होना जेण्डर की उपेक्षा का एक बेहतर उदाहरण है। पशुधन उत्पादन में महिलाओं का 90 प्रतिशत श्रम लगता है, जबकि दुग्ध सहकारी समितियों में उनकी सदस्यता मात्र 25 प्रतिशत ही होती है।

भारत में जेण्डर और पशुधन नीतियां

पशुधन की नीतियों का अध्ययन करने पर स्पष्ट प्रदर्शित होता है कि विशेषकर पशुधन उत्पादन में महिलाओं एवं पुरूषों के योगदान के विषय में नीतियों एवं जमीनी हकीकत में कोई समानता नहीं है। नीतियों एवं कार्यक्रमों के आलोक में पता चलता है कि 1990 के पहले तक भारत में पशुधन उत्पादन पर बनने वाली नीतियां ''उत्पादकता वृद्धि'' पर आधारित थीं, लेकिन 1990 के बाद के हस्तक्षेपों में भारत की संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम पर आधारित दक्षता दृष्टिकोण को अपनाया गया। हालाँकि इन दोनों ही दृष्टिकोणों से न तो छोटे उत्पादकों को और न ही महिलाओं को कोई सहायता मिली। इन त्रुटियों पर विचार करते हुए, भारत सरकार ने ग्यारहवीं पंच वर्षीय योजना – 2007–2012 में ''समग्रता'' व ''समानता'' के पहलुओं को शामिल करते हुए इसे ''समग्र विकास'' का नाम दिया। हालिया, राष्ट्रीय पशुधन नीति, 2013 में भी यह कहा गया कि – पशुधन के उत्पादन एवं उत्पादकता में एक स्थाई तरीके से वृद्धि की जाये जिससे किसानों की आजीविका सुनिश्चित हो सके। इसके उद्देश्यों में से एक उद्देश्य के रूप में– विशेषकर महिला एवं छोटे किसानों की उत्पादकता वृद्धि को विशेष तौर पर उल्लिखित किया गया है। नीति में आगे किसानों एवं किसान उत्पादक समूहों की पहुँच संस्थागत ऋण तक सुनिश्चित करने हेतु संयुक्त देयता समूह/स्वयं सहायता समूहों को प्रोत्साहन देने की बात भी कही गयी है।

''उत्पादकता में वृद्धि'' के बजाय ''समग्रता व समानता के लिए दक्षता'' की ओर बदलाव होने से पशुधन क्षेत्र में भी लोगों के दृष्टिकोण में बदलाव आया और इसे गरीबी घटाने तथा विकास को प्रोत्साहन देने के एक माध्यम के तौर पर देखा जाने लगा। हालाँकि, नीतियों को चलाने वाली संस्थाओं एवं वितरण प्रणालियों ने पशुधन नीतियों में बदलाव हेतु समावेशी विकास को लागू करने के अपने दृष्टिकोण को नहीं बदला है। समावेशी नीतियों को लागू करने के लिए अति सूक्ष्म और सूक्ष्म स्तरीय संस्थाओं में इस कमी को पर इस कमी को संज्ञान में लाते हुए बदलाव किया जाना अनिवार्य है। तब, यह प्रश्न भी उठना स्वाभाविक है कि क्या सिर्फ समावेशी दृष्टिकोण अपनाकर ही पशुधन क्षेत्र में जेण्डर सम्बन्धित मुद्दों से निपटा जा सकता है। 12वीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत, 2014–15 के दौरान शुरू किया गया राष्ट्रीय पशुधन मिशन पशुधन (एन.एल.एम.) के क्षेत्र में भारत सरकार द्वारा की गयी नवीनतम पहल है। 7 केन्द्र प्रायोजित और 7 केन्द्रीय क्षेत्र योजनाओं को संशोधित एवं नियमाधीन करते हुए राष्ट्रीय पशुधन मिशन को तैयार किया गया।

राष्ट्रीय पशुधन मिशन में महिला किसानों की पशुधन क्षेत्र में सहभागिता को लक्षित करने वाले एक अनुच्छेद को भी शामिल करने का प्रयास किया है। योजना के संचालन दिशा–निर्देश में यह स्पष्टता से कहा गया है कि ''जहाँ भी संभव हो'', मिशन की प्रत्येक योजनाओं में 30 प्रतिशत महिला लाभार्थियों को भौतिक रूप से योजना के अन्तर्गत लाभान्वित किया जाये।

इस सन्दर्भ में, यह आवश्यक हो जाता है कि पशुधन के क्षेत्र में महिलाओं एवं गरीबों को केन्द्र में रखते हुए जेण्डर के दृष्टिकोण को शामिल किया जाय। इस हेतु बहुत सी छोटी दाता संस्थाओं, नागर–समाज संगठनों एवं निजी संस्थाओं द्वारा अधिक से अधिक संख्या में सफल कार्यों अथवा मॉडलों से प्राप्त सीखों का प्रदर्शन करना आवश्यक है। सबसे अधिक विशिष्ट तो यह है कि इन पहलों से यह प्रदर्शित होता है कि उच्च उत्पादकता के लिए तकनीक तथा वित्त एवं स्वास्थ्य सेवाओं तक लोगों की पहुँच में वृद्धि हुई है, मूल्य श्रृंखला के विभिन्न चरणों में लोगों की सक्रिय सहभागिता बढ़ी है और लोग समूह आदि के रूप में संगठित होकर उत्पादकता एवं विपणन से अधिक आय प्राप्त करने हेतु सामूहिक रूप से कार्य कर रहे हैं। इससे निश्चित तौर पर व्यक्तिगत, पारिवारिक एवं सामाजिक स्तर पर जेण्डर की भूमिकाओं एवं सम्बन्धों में सकारात्मक बदलाव आये हैं। अतः विकास के लिए पशुधन अनुसंधान को बढ़ावा देने से जेण्डर सम्बन्धी मुद्दों को उठाने और पशुधन उत्पादन में महिलाओं और गरीबों के योगदान को मान्यता दिलाने हेतु प्रयास करने में सहायता मिलेगी। समान व न्यायसंगत विकास के लिए नीतियों को उन्नत बनाने हेतु शोध संस्थानों से कुछ महत्वपूर्ण निवेश लेना आवश्यक होगा।

सन्दर्भ

ब्रीथल, पी.एस. एवं तनेजा वी.के., भारत में पशुधन क्षेत्र : छोटे पशुपालकों के लिए संभावनाएं एवं चुनौतियां, 2016, कृषि शोध हेतु भारतीय कौंसिल एवं अन्तर्राष्ट्रीय पशुधन शोध संस्थान द्वारा **''भारत में छोटे स्तर के पशुधन उत्पादन : संभावनाएं एवं चुनौतियां''** विषय पर आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय कार्यशाला में प्रस्तुत किया गया पेपर।

क्रिस्टजानसन पी., वाटर्स–बायर, ए., जानसन, एन., तिपिलदा, ए., एनजुकी, जे., बाल्टेनवेक, आई., ग्रेस, डी. एवं मैकमिलन, एस., **''पशुधन एवं महिलाओं की आजीविका : हालिया तथ्यों की एक समीक्षा''**, 2010, डिस्कसन पेपर सं0 20, आईएलआरआई.

मिश्रा, एस. एवं पिका–सियामारा, यू., **''भारतीय पशुधन में नीतियां एवं कथन : गरीबों के परिवर्तन हेतु अच्छे अभ्यास''**, 2010, पीपीएलपीआई वर्किंग पेपर सं0 50, एफएओ, रोम।

■

एम मंजुला
प्रमुख वैज्ञानिक

आर रंगालक्ष्मी
निर्देशक

के थचिनामूर्थी
क्षेत्र समन्वयक
इकोटेक्नालॉजी प्रोग्राम एरिया
एम.एम. स्वामीनाथन शोध संस्थान
तीसरा क्रास रोड, तारामनी इन्स्टीट्यूटनल एरिया, तारामनी
चेन्नई– 600 113, फोन : 044–22541229/698
वेबवाइट : www.mssrf.org

Climate Change and Ecological approaches
LEISA INDIA, Vol. 19, No.2, June. 2017

.....शेष पृष्ठ 7 का

सभी 100 लीटर दूध समान लाभ पर बिक जाते हैं। जम्मू एवं कश्मीर में तमाम उत्पादों के होने के बावजूद भी गुज्जरों द्वारा तैयार किये गये घी की सबसे अधिक मांग है। इस घी के लिए लोग बाजार से अधिक मूल्य का भुगतान करते हैं। इस घी का स्वाद और खुशबू बहुत ही अद्वितीय है और इसे संरक्षित करने हेतु किसी दवा इत्यादि की आवश्यकता नहीं होती है। लकड़ी की धीमी आंच पर दूध को धीमे–धीमे पकाने से अच्छा घी तैयार होता है, जिसका स्वाद भी बहुत अच्छा होता है। समुदाय को न सिर्फ पशुपालन की कला में महारत हासिल है, वरन् वह पशुओं की चिकित्सा करने में भी काफी माहिर हैं। वे स्वदेशी तकनीकी ज्ञान के ज्ञाता हैं। उन्हें मनुष्यों और जानवरों के इलाज के लिए पायी जाने वाली प्राकृतिक जड़ी–बूटियों एवं झाड़ियों के उपयोग की भी अच्छी जानकारी है। यह ज्ञान उनके पूर्वजों द्वारा पीढ़ियों से हस्तान्तरित होता आ रहा है। प्राकृतिक तौर पर उगे पौधों ने उनके रहने और पशुओं के इलाज पर आने वाले खर्च को निश्चित तौर पर कम किया है। पशुओं से प्राप्त उत्पाद नुकसानदायक दवा के अपशिष्टों से प्रदूषित नहीं हैं। साथ ही इन्होंने पर्यावरण पर जीवाणुनाशकों एवं रसायनों के बढ़ते बोझ को भी कम किया है।

निष्कर्ष

सच तो यह है कि गुज्जर समुदाय की उपज अपने पूर्वजों द्वारा बनाये गये कुछ निश्चित अभ्यासों के उपयोग के माध्यम से रणनीतिक तरीके से हुई है। उन्होंने आम जनता के साथ बेहतर सम्बन्ध स्थापित किया है। लोगों द्वारा उन्हें बस्तियां बसाने के लिए भूमि का प्रस्ताव दिया जा रहा है। वे दुनिया भर में होने वाली घटनाओं से बहुत कम प्रभावित होते हैं और प्रकृति की गोद में, हरे–भरे वातावरण के निकट अपने पशुओं के साथ रहते हैं। हालाँकि बहुत से गुज्जर बस्तियों में स्थाई रूप से बस गये हैं, फिर भी अभी भी बहुत से गुज्जर घूमन्तु जीवन का आनन्द उठा रहे हैं। यद्यपि गुज्जरों को आधुनिक शिक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधाएं मुहैया कराई जा रही हैं, तथापि वे अभी भी अपनी जड़ों से जुड़े हुए हैं और पुराने व नये के बीच उचित संतुलन स्थापित करते हुए अपने आदर्शों का अनुपालन करते हैं। उन्होंने बाजार में अपने और अपने उत्पादों के लिए एक जगह बनाई है। उनके पास चीजों को करने का अपना स्वयं का अनोखा अन्दाज है। उनकी खाद्य आदतें/भोजन पद्धति बिलकुल भिन्न हैं और इसलिए उनकी अलग जीवनशैली उन्हें खाद्य सम्प्रभु आदिवासी के तौर पर दूसरे आदिवासियों से विशिष्ट व अलग बनाती है।

■

अमनदीप सिंह
छात्र
कृषि विज्ञान एवं तकनीकी शेर–ए–कश्मीर विश्वविद्यालय
आर.एस.पुरा, जम्मू एवं कश्मीर
भारत– 181 102
ई–मेल :amandeepsinghvet@gmail.com

प्रणव कुमार
असिस्टेण्ट प्रोफेसर, पशु चिकित्सा एवं पशुपालन प्रसार शिक्षा विभाग
कृषि विज्ञान एवं तकनीकी शेर–ए–कश्मीर विश्वविद्यालय
आर.एस.पुरा, जम्मू, जम्मू एवं कश्मीर
भारत– 181 102
ई–मेल :pranavahe@gmail.com

Food Sovereignty
LEISA INDIA, Vol. 19, No.1, March 2017

पशुधन को एकीकृत करते हुए कृषि-पारिस्थितिकी एवं आय को सुरक्षित करना

के. सुरेश कन्ना

प्रायः प्राकृतिक पारिस्थितिकी तरीकों को अपना कर किये जाने वाले अधिकाँश कार्यों के परिणाम स्थाई होते हैं। कुछ साधारण से अभ्यास जैसे– कृषि एवं पशुधन का एकीकरण दोनों गतिविधियों के लिए लाभकारी होता है। यह लाभ उत्पादन वृद्धि, लागत में कमी, उन्नत पारिवारिक पोषण और बेहतर कृषि पारिस्थितिकी के रूप में प्रदर्शित होता है।

विकासात्मक अनुभवों से यह प्रदर्शित होता है कि संवेदनशील/नाजुक परिस्थितियों में विकास का रास्ता बहुत सीधा नहीं होता है वरन् बहुत सी चुनौतियों से गुजरना पड़ता है। फिर भी ऐसे बहुत से तरीके हैं, जिनको अपनाकर इन चुनौतियों से निपटा जा सकता है। पशुधन पालन एक ऐसा ही तरीका है। पशुधन लोगों को इन चुनौतियों से निपटने की प्रेरणा देता है। पशु जो भोजन ग्रहण करते हैं और गोबर का उत्सर्जन करते हैं, वह छोटे–मझोले किसानों के लिए पोषण एवं आय प्रदान करने का एक साधन होता है। गरीब परिवारों के लिए पशुधन एक बैंक की तरह होते हैं, जो उन्हें बचत खाता जैसी सुविधाएं प्रदान करते हैं। अर्धशुष्क और शुष्क भूमियों के उपयोग और प्रबन्धन में पशुधन उत्पादन एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन परिस्थितियों में, खेती के साथ उसके पूरक की भूमिका में पशुपालन लोगों की आजीविका का पारम्परिक एवं मुख्य स्रोत होते हैं।

इस बहुपयोगी उपयोगिता के बावजूद, पशुधन को वरीयता दिये जाने के ऊपर स्पष्ट रूप से कहीं भी कुछ नहीं कहा गया है। यहां तक कि विकासात्मक कार्यक्रमों में भी इसे मात्र एक आयजनक गतिविधि के रूप में देखा जाता है, जो इसकी संभावनाओं और विशिष्टता को सीमित करती है। नीचे दी गयी कहानी में फसल उत्पादकता को बढ़ाने और कृषि पारिस्थितिकी को बनाने के लिए एक मुख्य तत्व के तौर पर पशुधन प्रबन्धन के लिए एकीकृत दृष्टिकोण की आवश्यकता एवं व्यवस्थित नियोजन को विस्तार से बताया गया है।

सब्ज़ियां उगाने के लिए जानवरों के अपशिष्टों से तैयार खाद का उपयोग

पहल

सिंगोनोडाई नागप्पट्टिनम जिले के थारंगमपादी तालुक के थिरूक्कादायुर विकासखण्ड का एक छोटा सा गाँव है। लगभग 60 परिवारों वाला यह गाँव वर्ष 2004 में आयी सुनामी तूफान से प्रभावित हुआ था। उस तूफान में कृषि भूमि पर समुद्र का खारा पानी आ जाने और काफी दिनों तक जल–जमाव हो जाने के कारण मृदा में लवणता की मात्रा बढ़ गयी थी। इस समय, स्थाई कृषि विकल्पों को प्रोत्साहन देने हेतु छोटे किसानों साथ काम करने वाली एक स्वैच्छिक संगठन कुडुम्बम ने इस गाँव में किसान विद्यालय के माध्यम से जैविक कृषि पद्धति के ऊपर किसानों का प्रशिक्षण एवं प्रदर्शन आयोजित किया। सहभागी तरीके से सीखने और अनुभवों को साझा करने की प्रक्रिया ने इस गाँव के किसानों को जैविक खेती पद्धति अपनाने हेतु उत्प्रेरित किया। किसानों ने मिलकर एक जैविक सब्जी उत्पादक किसान समूह का गठन किया। जैविक खेती पद्धतियों को स्थाईत्व प्रदान करने की दृष्टि

संकर प्रजातियों की तुलना में उम्बलाचेरी प्रजाति बीमारियों के प्रति अधिक सहनशील हैं।

से जानवर खरीदने हेतु किसानों का ऋण की सहायता दी गयी ताकि वे गौमूत्र व गाय के गोबर का उपयोग करते हुए अपने खेत के लिए जैविक खाद बना सकें साथ ही गाय का दूध बेचकर उन्हें अतिरिक्त आमदनी भी हो।

पशुओं का पारिस्थितिकी प्रबन्धन

सिंगोनोडाई गाँव में रहने वाले भाष्करन एक युवा व उत्साही किसान हैं। उनके पास 2 एकड़ जमीन है। वे अपने डेढ़ एकड़ खेत में मूंगफली की खेती करते हैं। आधा एकड़ खेत में बालू आ जाने के कारण वह सब्ज़ियां उगाने के लिए ज्यादा उपयुक्त है और इसलिए वे उसमें सब्ज़ियां, विशेषकर विभिन्न प्रकार की लौकियों की खेती करते हैं। उन्होंने जैविक सब्ज़ियों के उत्पादन के लिए मुख्य तत्व के तौर पर पशुधन को एकीकृत करने हेतु समूह की अगुवाई करने का निश्चय किया। उन्होंने वर्ष 2009 में परियोजना के सहयोग से स्थानीय नस्ल उम्बलाचेरी की एक गाय खरीदी। उन्होंने स्थानीय नस्ल की गाय खरीदने को ही प्राथमिकता दिया, क्योंकि वे जानते थे कि संकर गायों की तुलना में उम्बलाचेरी गाय में संक्रामक रोगों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता अधिक है। वर्तमान में, उनके पास स्थानीय नस्ल की दो गायें एवं एक बछड़ा है।

> मृदा को पवित्र मानते हैं और पशुधन को खेती में सहयोग करने हेतु एक महत्वपूर्ण तत्व के तौर पर माना जाता है।

भाष्करन और उनके परिवार के सदस्य जानवरों को अपने परिवार का एक हिस्सा मानते हैं। वे इनके भोजन एवं स्वास्थ्य की देख–भाल अत्यन्त सावधानी से करते हैं। वे इन्हें चराई के लिए खुला नहीं छोड़ते हैं। भाष्करन और उनकी माता प्रतिदिन प्रति जानवर के हिसाब से लगभग 20 किग्रा0 हरी घास प्रतिदिन एकत्र करती हैं। कुल घास का लगभग 50 प्रतिशत वे अपने जमीन से एकत्र करती हैं और शेष घास वे सामूहिक चारागाह वाली जमीन से लेती हैं। हरी घासों के अलावा, प्रत्येक जानवर को प्रतिदिन 2 किग्रा0 गेंहूं की भूसी, 1 किग्रा0 अजोला मिश्रित मूंगफली की खली और 1 किग्रा चावल का आटा खिलाया जाता है। इसके साथ ही अपने खेत से मूंगफली खुदाई के बाद वे मूंगफली के सुखे डण्ठल को भी इन जानवरों को खिलाते हैं। वे सिर्फ गेंहूं की भूसी और चावल का आटा ही बाजार से खरीदते हैं, शेष अन्य सामग्रियों को वे अपने खेत से ही पुनर्चक्रित करते हैं।

पारम्परिक ज्ञान का उपयोग कर जानवरों के स्वास्थ्य को प्रबन्धित किया गया। भाष्करन ने पाया कि कि अपनी मां से प्राप्त ये पारम्परिक ज्ञान जानवरों के स्वास्थ्य को प्रबन्धित करने के लिए काफी उपयोगी हैं। खुरपका– मुँहपका रोग

उम्बलाचेरी प्रजाति

अपनी ताकत और मजबूती के कारण उम्बलाचेरी प्रजाति तमिलनाडु के लिए एक उत्कृष्ट शुष्क प्रजाति है। यह प्रजाति मूल रूप से तमिलनाडु के तटीय जिलों जैसे– तिरूवरूर एवं नगापट्टिनम में पायी जाति है। धान के दलदली खेतों में काम करने के लिए छोटे कद के जानवरों के चयन के परिणाम–स्वरूप ही यह प्रजाति सामने आयी। तमिलनाडु के नगापट्टिनम जिले के उम्बलाचेरी गाँव में इस प्रजाति का उदय होने के कारण इसे उम्बलाचेरी नाम से जाना जाने लगा।

इस प्रजाति के बैल तपती गर्मी में 6–7 घण्टे तक काम करने की क्षमता रखते हैं। एक गाय प्रतिवर्ष एक बच्चा देती है और इस प्रकार वह अपने पूरे जीवन में 10 बच्चों को जन्म देती है। इस प्रजाति के गायों से निकलने वाले दूध में वसा का प्रतिशत 4.5 से 5.5 प्रतिशत के बीच होता है और दूध बहुत स्वादिष्ट होता है। संकर प्रजाति के अन्य जानवरों की तुलना में उम्बलाचेरी प्रजाति के जानवरों में संक्रामक बीमारियों के प्रति रोग प्रतिरोधक क्षमता अधिक होती है। अपनी त्वचा को तेजी से इधर–उधर घुमाकर यह अपने शरीर पर बैठने वाली मक्खियों एवं अन्य कीड़ों को भगा देती है। यह विशिष्ट विशेषता केवल इसी प्रजाति में पायी जाती है।

इस प्रजाति को विकसित करने हेतु तमिलनाडु सरकार ने 1954 में तंजावुर जिले के ओरथानाडु में एक फार्म को स्थापित किया। बाद में इसके मूल स्थान को संरक्षित करने हेतु उम्बलाचेरी गाँव के पास कोरक्कई में एक नया फार्म विकसित किया गया। देशी प्रजाति के जर्मप्लाज्म को संरक्षित करने की दृष्टि से तमिलनाडु पशुधन विकास संस्थान के माध्यम से, वर्ष 2004 के दौरान उम्बलाचेरी जानवर चरवाहा संघ के सदस्यों को 40 बच्चों (बछवा/बछिया) (heifers) का निःशुल्क वितरण किया गया।

की रोक–थाम के लिए सावधानीपूर्ण उपायों के तहत् भाष्करन ने पहले ही जानवरों के पैरों में नीम का तेल लगाया। इसके साथ ही उन्होंने गोबर के उपलों के साथ नीम की पत्तियों का धुंआ भी जानवरों को दिया।

फसल–पशुधन एकीकृत खेत से प्राप्ति

फसल और पशुधन के एकीकरण से भाष्करन को बहुत से फायदे हुए। गाय के गोबर और खेत से निकले अपशिष्ट पदार्थों का पुनर्चक्रीकरण करके लगभग 15 ट्राली खाद तैयार हुई, जिसे उन्होंने अपने खेत में उपयोग किया। इससे मृदा स्वास्थ्य में उल्लेखनीय सुधार हुआ। जैविक खाद का निरन्तर उपयोग करने से मृदा की नमी संरक्षण करने की क्षमता में भी वृद्धि हुई है। भाष्करन गर्व से कहते हैं, ''आप खेत में जाकर कहीं से भी एक मुट्ठी मिट्टी उठा लीजिए, उसमें आपको बहुत सारे केंचुए मिल जायेंगे। यह सब घर पर बनी जैविक खाद का कमाल है, जो हमें अपने जानवरों से मिला है।'' उत्पादन में भी काफी वृद्धि हुई है, जो सब्ज़ियों की गुणवत्ता के रूप में सभी को दिख रही है। उदाहरण के लिए, चिचिड़ा की लम्बाई पहले की अपेक्षा अधिक बढ़ी है और उसके स्वाद में भी वृद्धि हुई है।

जैविक खाद के उपयोग से रसायनिक उर्वरकों का प्रयोग काफी कम हो गया, जिससे निश्चित तौर पर उत्पादन की लागत में कमी आयी है। भाष्करन ने बताया कि बुनियादी उर्वरक के रूप में घर पर बनी खाद का उपयोग कर वह प्रति एकड़ रू0 5000.00 तक बचा सकते हैं। इसी प्रकार घर पर तैयार कीटनाशक का उपयोग कर उन्होंने प्रति एकड़ लागत में रू0 3000.00 की और कमी की है।

दो गायों से प्रतिदिन लगभग 8 लीटर दूध निकलता है। यह इस प्रजाति की सामान्य दुग्ध उत्पादन से लगभग दोगुना है। प्राप्त 8 लीटर दूध में से एक लीटर दूध का उपयोग घरेलू खर्च के लिए किया जाता है। शेष सात लीटर दूध को आस–पास के दूध बेचने वालों दुधियों को रू0 28.00 प्रति लीटर की दर से बेच दिया जाता है। इस प्रकार वह अपने दो गायों से प्रतिमाह लगभग रू0 6000.00 की आय प्राप्त करते हैं।

निष्कर्ष

भाष्करन का खेत वास्तव में पारिस्थितिकी खेती का एक सफल उदाहरण है जहां प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्रों एवं प्रक्रियाओं का अधिकतम लाभ उठाने के लिए विभिन्न तत्वों को एकीकृत किया गया है। मिट्टी की पूजा होती है और खेती में सहयोग प्रदान करने के लिए जानवरों को एक महत्वपूर्ण घटक माना जाता है। खेती और पशुधन के एकीकरण से मृदा एवं जानवर दोनों को लाभ होता है। इससे एक तरफ जहाँ दोनों को पोषण मिलता है, वहीं परिवार को भी सुरक्षित व पौष्टिक भोजन मिलने की निश्चितता हो जाती है। आज इनका पूरा परिवार खेती में लगा हुआ है। कृषि पारिस्थितिकी में सुधार हुआ है और सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि इनकी खेती आर्थिक रूप से लाभप्रद है।

आज भाष्करन एकीकृत जैविक खेती के लिए आस–पास के क्षेत्र में आदर्श किसान के रूप में प्रसिद्ध हैं। उनसे प्रेरणा लेकर उनके गाँव के लगभग 15 किसानों ने अपने खेत के छोटे–छोटे टुकड़ों पर जैविक कृषि करना प्रारम्भ कर दिया है।

■

के. सुरेश कन्ना
कुडुम्बम
सं० 113/118, सुन्दरराज नगर, सुब्रमण्यपुरम
त्रिची– 620 020, तमिलनाडु, भारत
ईमेल : sureshkanna_kudumbam@yahoo.in

Climate Change and Ecological approaches
LEISA INDIA, Vol. 19, No.2, Sept. 2017

जलवायु परिवर्तन के सापेक्ष एकीकृत खेती : एक कारगर उपाय

अर्चना श्रीवास्तव एवं अजय सिंह

बदलती जलवायुविक परिस्थितियों का सबसे ज्यादा प्रभाव छोटे, मझोले किसानों पर ही पड़ता है, क्योंकि एक तो इनके पास खेती की जमीनें कम होती हैं, दूसरे इनके पास संसाधन भी कम होते हैं, जिससे इनकी निर्भरता एकल खेती पर अधिक होती है। उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जनपद के लघु, सीमान्त किसानों ने इन समस्याओं को ध्यान में रखते हुए जलवायु परिवर्तन से निपटने हेतु एकीकृत खेती मॉडल को अपनाया और उससे लाभान्वित हुए।

उत्तर प्रदेश का गोरखपुर जनपद सामान्यतः बाढ़ एवं वर्तमान में सूखा की आपदाओं से भी प्रभावित रहता है। आमतौर पर बड़े किसानों की अपेक्षा लघु एवं सीमान्त किसानों की विभिन्न तरह की समस्याएं होती हैं। इनके पास आजीविका के अवसर कम होते हैं, परिवार को पालने के लिए इनकी मुख्य निर्भरता खेती पर होती है, इनके पास खेती के संसाधन सीमित होने की वजह से खेती भी ठीक ढंग से व समय से नहीं कर पाते। इसके साथ ही एकल खेती पर पूर्ण निर्भरता होने के कारण बदलती जलवायुविक परिप्रेक्ष्य में लघु एवं सीमान्त किसानों की खेती पर जलवायु परिवर्तन जैसे– सूखा, बाढ़, वर्षा, तापमान आदि का असर अधिक हो रहा है। परिणामतः किसानों की आजिविका पर संकट आ जाता है और यही कारण है कि छोटे, सीमान्त किसान खेती से विमुख होकर आजीविका के अन्य स्रोतों की ओर भाग रहे हैं या पलायन को मजबूर है।

ऐसी स्थिति में कृषि व आजीविका में स्थाईत्व लाने की दृष्टि से कृषि–वानिकी एवं पशुपालन को शामिल करते हुए एकीकृत खेती एक बेहतर विकल्प हो सकता है। वैसे भी भारत मे खेती के साथ पशुपालन करने का इतिहास सदियों पुराना है। यहां पशुपालन खेती का एक अभिन्न अंग है। एकीकृत खेती अर्थात् ऐसी खेती, जिसमें कृषि के साथ उससे सम्बध रखने वाले अन्य घटकों (पशुधन, उद्यान, वन, मछली, मुर्गी आदि) को भी जोडकर खेती करते हैं, तो वे अपनी खेती पर पड़ने वाले जलवायु परिवर्तन के कुप्रभावों एवं उससे उत्पन्न जोखिम को कम करके अपनी आजीविका को बेहतर बना सकते हैं और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने में सक्षम हो सकते हैं।

खेती पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

खेती पर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को छोटे, मझोले किसानों ने महसूस किया, उसे बिन्दुवार इस प्रकार देख सकते हैं –

- बारिश की पद्धति में बदलाव जैसे– कम वर्षा, कम समय में अधिक बारिश, एक से दूसरी बारिश के बीच में लम्बा अन्तराल व असमय बारिश का होना। इन कारणों से फसलों की बुवाई का समय परिवर्तित हो रहा है। साथ ही फसलों की कटाई, मड़ाई एवं खुदाई पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। नतीजतन उत्पादन प्रभावित होता है।
- कम समय में अधिक बारिश के कारण बाढ़ व जल जमाव जैसी परिस्थितियां बन जाने के कारण खरीफ की फसल डूब जाती है और रबी की फसल की बुवाई प्रभावित होती है।
- तापमान में वृद्धि व सूखा की स्थितियां उत्पन्न होने के कारण खेती की लागत बढ़ती है और लाभ का अनुपात / प्रतिशत कम हो रहा है।
- तापमान में उतार–चढ़ाव के कारण जायद की फसल की पैदावार घट रही है। लतावर्गीय परिवार की सब्जियों की गुणवत्ता पर सीधा असर पड़ता है। साथ ही खर–पतवार का नियन्त्रण नहीं हो पाता है।
- ठण्ड पड़ने का समय बदलने व अवधि कम होने के कारण रबी की बुवाई का समय परिवर्तित हुआ, जिससे आगे चलकर उपज प्रभावित होती है।

जलवायु परिवर्तन की उपरोक्त परिस्थितियां एकल खेती करने वाले छोटे, मझोले किसानों को अधिक प्रभावित करती हैं। उनकी खाद्य सुरक्षा खतरे में पड़ती है और खेती से उनका मोह भंग होता है।

जलवायु परिवर्तन के प्रभावो से निपटने हेतु एक सशक्त मॉडल : एकीकृत खेती

उपरोक्त समस्याओं को ध्यान में रखते हुए विगत चार दशकों से राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर स्थाई कृषि, जेण्डर, समानता, महिला सशक्तिकरण, जलवायु परिवर्तन जैसे मुद्दों पर काम करने वाले स्वैच्छिक संगठन गोरखपुर एन्वायरन्मेण्टल एक्शन ग्रुप ने पूर्वी उत्तर प्रदेश के बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों के लघु, सीमान्त किसानों के साथ खेती व उसके उपतंत्रों– जानवर, मछली, कृषि– वानिकी सभी को शामिल करते हुए खेती की एकीकृत प्रणाली पर काम करने का निश्चय किया। इसके तहत् पूर्वी उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जनपद के सभी बाढ़ प्रभावित विकास खण्डों में लघु, सीमान्त किसानों के साथ बैठकें कर उन्हें एकीकृत खेती प्रणाली अपनाने पर जोर दिया गया। प्रत्येक 15 दिनों पर आयोजित किसान विद्यालयों में एकीकृत खेती से होने वाले फायदों को बताया गया। इसके साथ ही किसानों को विषयगत प्रशिक्षण दिया गया तथा तकनीकी जानकारी एवं अन्य सहयोग हेतु कृषि विभाग एवं कृषि विज्ञान केन्द्रों से उनका जुड़ाव भी कराया गया।

इस मॉडल के तहत् किसानों ने एक तरफ जहाँ अपनी खेती में विविधता को अपनाया, वहीं पशुपालन, कृषि–वानिकी तथा गृहवाटिका करने में भी विविधता को महत्व दिया।

विविधता से नुकसान की भरपाई

गोरखपुर जनपद के झंगहा विकासखण्ड के शिवबचन यादव ने एकीकृत खेती मॉडल को अपनाकर एक उदाहरण प्रस्तुत किया। उन्होंने जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने हेतु खेती के साथ पशुपालन, गृहवाटिका, वानिकी, उद्यान सभी में विविधता को अपनाकर एक तरफ अपनी आय बढ़ाई, वहीं दूसरी तरफ पशुपालन एवं कृषि अपशिष्टों से तैयार देशी खाद व कम्पोस्ट का उपयोग कर मृदा व परिवार दोनों के स्वास्थ्य को भी उन्नत किया। उनके द्वारा अपनायी गयी एकीकृत प्रणाली को तालिका 1 से निम्नवत् देख सकते हैं।

निष्कर्ष

एकीकृत खेती प्रणाली को अपनाकर शिवबचन अपने घर की खाद्य, तिलहन, दलहन व सब्जी की आवश्यकताओं को तो पूरा करते ही हैं, पशुपालन से उनको घर के लिए पर्याप्त मात्रा में दूध–दही मिल जाता है। साथ ही बेचने के लिए भी दूध बच जाता है, जिससे उनकी आय में वृद्धि हुई है। मात्र खेती की विविधता से ही उनकी खेती के लागत–लाभ अनुपात में 1 : 3 की वृद्धि हुई है।

बेहतर नियोजन से उनको अपने पशुओं के लिए वर्ष भर हरा चारा भी उपलब्ध रहता है। इस प्रणाली में वानिकी को शामिल करने से उन्हें बाढ़ के दौरान पशुओं के लिए हरा चारा की उपलब्धता आसानी से होने लगी। वर्तमान में उन्हें अपने पशुओं के लिए पूरे वर्ष में 372.30 कुन्तल हरा चारा की आवश्यकता होती है, जिसकी पूर्ति वे विभिन्न माध्यमों से करते हैं। इसी प्रकार गृहवाटिका से जहाँ उनको पूरे वर्ष अलग–अलग तरह की ताज़ी सब्ज़ियां प्राप्त होती हैं वहीं वानिकी से उनके घर की ईधन की समस्या का भी समाधान होता है।

शिव बचन अपनी छोटी सी जोत में एकीकृत खेती करते हुए भोजन, चारा, रेशा, ईधन एवं आय सभी प्राप्त करते हैं। खेती, पशुधन, वानिकी, गृहवाटिका आदि विभिन्न घटकों के एकीकृत खेती प्रणाली से होने वाले लागत–लाभ विश्लेषण को तालिका 2 के माध्यम से दर्शाया गया है। विश्लेषण से पता चलता है कि एकीकृत खेती प्रणाली अपनाकर किसान जलवायु परिवर्तन के सापेक्ष अपने नुकसान को कम करते हुए लाभ का प्रतिशत/अनुपात बढ़ा सकता है।

तालिका 1 : एकीकृत खेती प्रणाली में विविधता

गतिविधियाँ	विविधता
खेती के स्तर पर	**खरीफ :** धान, मडुआ, सांवा, कोदो एवं चरी **रबी :** आलू, धनिया, लहसून, प्याज, गेहूँ, मटर, सरसों, मूली, शलजम, गोभी, मिर्च एवं बरसीम **जायद :** लौकी, करैला, टमाटर, चरी एवं बैगन कार्बनिक एवं देशी खादों का अधिक प्रयोग
पशुपालन के स्तर पर	पशुओं की संख्या 07 (02 भैंस, 03 गाय, 02 बछिया एवं 01 पड़िया)
वानिकी के स्तर पर	पेड़ों की संख्या एवं प्रकार में वृद्धि (बबूल, सीघुर, जंगल जलेबी एवं कुंश) जो उगे हुए हैं। (50–55 पेड़)
गृहवाटिका के स्तर पर	मिर्च, टमाटर, कुम्हड़ा, धनिया, तोरई, करैला एवं लौकी
उद्यान के स्तर पर	उद्यान के स्तर पर अमरूद 30, बेल 01, आंवला 05, अनार 02, नीबू 02, कदम 01 एवं पपीता

तालिका 2 : एकीकृत खेती प्रणाली : लागत लाभ विश्लेषण (रु० में)

विवरण	लागत	उत्पादन	लाभ	लागत-लाभ अनुपात
फसल	29,260/-	1,20,115	90,855/-	1:3.1
चारा	3,979/-	14,700	10,721/-	1:2.7
पशुधन	81,731/-	1,47,000	65,269/-	1:0.8
वानिकी	125/-	6,200	6,075/-	1:48
उद्यान	600/-	11,510	10,910/-	1:18
गृहवाटिका	1,245/-	9,360	8,115/-	1:6.5
कम्पोस्ट	2,500/-	8,250	5,750/-	1:2.3
योग	**1,19,440/-**	**3,25,135**	**97,695/-**	**1:6**

नोट : वानिकी 7 वर्ष पुरानी है जबकि उद्यान 5 वर्ष पुरानी है।

आज उनकी पहचान न सिर्फ अपने जनपद में वरन् आस–पास के जनपदों में भी एक अनुभवी किसान के तौर पर है। वे मास्टर ट्रेनर के तौर पर कृषि विभाग, कृषि विज्ञान केन्द्र एवं अन्य संस्थाओं में अपनी सेवाएं देते हैं। उनके कामों से प्रेरणा लेकर आस–पास के गाँवों एवं अन्य जनपदों में भी लोग एकीकृत खेती मॉडल को अपना रहे हैं और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने में सक्षम हो रहे हैं।

■

अर्चना श्रीवास्तव एवं अजय कुमार सिंह
परियोजना समन्वयक
गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप, गोरखपुर

Issues and Themes of LEISA INDIA Published in English 2001-2017

V.3, No. 1, 2001 - Coping with disaster
V.3, No. 2, 2001 - Go global stay local
V.3, No. 3, 2001 - Lessons in scaling up
V.3, No. 4, 2001 - Biotechnology

V.4, No. 1, 2002 Managing Livestock
V.4, No. 2, 2002 - Rural Communication
V.4, No. 3, 2002 - Recreating living soil
V.4, No. 4, 2002 - Women in agriculture

V.5, No. 1, 2003 - Farmers Field School
V.5, No. 2, 2003 - Ways of water harvesting
V.5, No. 3, 2003 - Access to resources
V.5, No. 4, 2003 - Reversing Degradation

V.6, No. 1, 2004 - Valuing crop diversity
V.6, No. 2, 2004 - New generation of farmers
V.6, No. 3, 2004 - Post harvest Management
V.6, No. 4, 2004 - Farming with nature

V.7, No. 1, 2005 - On Farm Energy
V.7, No. 2, 2005 - More than Money
V.7, No. 3, 2005 - Contribution of Small Animals
V.7, No. 4, 2005 - Towards Policy Change

V.8, No. 1, 2006 - Documentation for Change
V.8, No. 2, 2006 - Changing Farming Practices
V.8, No. 3, 2006 - Knowledge Building Processes
V.8, No. 4, 2006 - Nurturing Ecological Processes

V.9, No. 1, 2007 - Farmers Coming together
V.9, No. 2, 2007 - Securing Seed Supply
V.9, No. 3, 2007 - Healthy Produce, People and Environment
V.9, No. 4, 2007 - Ecological Pest Management

V.10, No. 1, 2008 -Towards Fairer Trade
V.10. No. 2, 2008 - Living soils
V.10, No. 3, 2008 - Farming and Social Inclusion
V.10, No. 4, 2008 - Dealing with Climate Change

V.11, No. 1, 2009 - Farming Diversity
V.11, No. 2, 2009 - Farmers as Entrepreneurs
V.11, No. 3, 2009 - Women and Food Sovereignty
V.11, No. 4, 2009 - Scaling up and sustaining the gains

V.12, No.1, 2010 - Livestock for sustainable livelihoods
V.12, No.2, 2010 - Finance for farming
V.12, No.3, 2010 - Managing water for sustainable farming

V.13, No.1, 2011 - Youth in farming
V.13, No.2, 2011 - Trees and farming
V.13, No.3, 2011 - Regional Food System
V.13, No.4, 2011 - Securing Land Rights

V.14, No.1, 2012 - Insects as Allies
V.14, No.2, 2012 - Greening the Economy
V.14, No.3, 2012- Farmer Organisations
V. 14, No.4, 2012- Combating Desertification

V. 15, No.1, 2013- SRI: A scaling up success
V. 15, No.2, 2013- Farmers and market
V. 15, No.3, 2013- Education for change
V. 15, No.4, 2013- Strengthening family farming

V. 16, No. 1, 2014- Cultivating farm biodiversity
V. 16, No. 2, 2014- Family farmers breaking out of poverty
V. 16, No. 3, 2014- Family farmers and sustainable landscapes
V. 16, No. 4, 2014- Family farming and nutrition

V. 17, No. 1, 2015- Soils for life
V. 17, No. 2, 2015- Rural-urban linkages
V. 17, No. 3, 2015- Water-lifeline for livelihoods
V. 17, No. 4, 2015- Women forging change

V. 18, No. 1, 2016- Co-creation to knowledge
V. 18, No. 2, 2016- Valuing underutilised crops
V. 18, No. 3, 2016- Agroecology-Measurable and sustainable
V. 18, No. 4, 2016- Stakeholders in agroecology

V. 19, No. 1, 2017- Food Sovereignty
V. 19, No. 2, 2017- Climate Change and Ecological appraches
V. 19, No. 3, 2017- Ecological Livestock
V. 19, No. 4, 2017- Millet Farming Systems

फ़ोटो : लेखक

काशीपुर में किसानों की वापसी मिश्रित खेती की ओर

खाद्य सम्प्रभुता की ओर एक आत्मनिर्भर पथ

कुलास्वामी जगन्नाथ जेना

ओडिशा के रायगढ़ एवं कालाहांडी जिले के आदिवासी किसान खाद्य उत्पादन के कृषि–पारिस्थितिकी सम्बन्धी मॉडलों को अपनाकर अपने खेतों एवं अपनी थाली में जैव विविधता को प्रोत्साहित कर रहे हैं। अपनी स्वयं की खाद्य प्रणाली को परिभाषित करते हुए वे आत्मनिर्भरता की राह पर चल रहे हैं।

ओडिशा के रायगढ़ और कालाहांडी जिले के आदिवासी किसान भूख, भूखमरी के कारण मौतें, सूखा, बंधुआ मजदूरी, जबरदस्ती पलायन आदि बहुत सी चुनौतियों का सामना कर रहे हैं। इनमें से बहुत से किसानों को भूमि सुधार कार्यक्रम के अन्तर्गत सरकार द्वारा जमीन के छोटे–छोटे टुकड़े दिये गये, जिन पर वे कभी भी खेती नहीं कर सकते। इस क्षेत्र में रोजगार के अवसर बहुत सीमित होने के कारण ये किसान खेतिहर मजदूरी तथा इसी प्रकार के अन्य कार्यों को करने हेतु अन्यत्र पलायन करते हैं। इस समुदाय को वापस खेती से जोड़ने तथा खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने हेतु सहायता देने के लिए स्थानीय स्तर की एक स्वैच्छिक संगठन अग्रगामी खाद्य उत्पादन के परिवार एवं समुदाय आधारित कृषि–पारिस्थितिकी सम्बन्धी माडलों को प्रोत्साहित कर रही हैं।

वैकल्पिक स्थानीय खाद्य उत्पादन पहल

मोटे अनाज और दलहन ओडिशा के सूखा क्षेत्र में उगायी व खायी जाने वाली प्रमुख फसलें हैं। भारत में गेंहूं और चावल माडल पर आधारित सार्वजनिक वितरण प्रणाली से यहां के आदिवासी किसानों को कोई फायदा नहीं है। अग्रगामी संस्था ने एक वैकल्पिक खाद्य उत्पादन एवं भण्डारण प्रणाली (ए.एफ.पी.एस.एस.) पर रायगढ़ एवं कालाहांडी जिले की आदिवासी महिला किसानों को संगठित कर 115 महिला स्वयंसेवी संगठन तैयार किया। उन्होंने निर्णय किया कि कोई ऐसा विकल्प होना चाहिए, जो सबसे अलग हो और खाद्य सुरक्षा एवं सम्प्रभुता के बारे में विभिन्न विचारों पर आधारित हो, जिसे सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा अपनाया गया हो।

ए.एफ.पी.एस.एस. मॉडल में कार्य के पहले चरण में, ऊसर भू–खण्डों पर मेड़बन्दी, गहरी जुताई एवं मृदा की ऊपरी परत को उर्वर बनाने आदि से सम्बन्धित कार्यों को सम्पादित किया गया। अग्रगामी द्वारा स्थापित बीज / अनाज बैंक से किसानों को बीज ऋण प्रदान किया गया, जिसे उनके द्वारा अनाज के रूप में वापस करने की आवश्यकता होगी। अगले चरण में देशज बीजों का उपयोग करते हुए इस जमीन पर पारम्परिक और जैव विविध खेती की गयी। एक बार फसल की कटाई के बाद, लोग लिये गये बीज ऋण को अनाज के रूप में सामुदायिक अनाज कोष में वापस कर देते हैं। इस सामुदायिक अनाज कोष से खाद्य संकट के दिनों में न केवल आदिवासी समुदायों की खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित होती है, वरन् खाद्य सम्प्रभुता को प्राप्त करने हेतु विविध पारम्परिक कृषि–पारिस्थितिकी गतिविधियों को भी बढ़ावा मिलता है।

अग्रगामी के पिछले तीन दशकों के प्रयासों से यह प्रदर्शित होता है कि जैव–विविध, जैविक व प्राकृतिक खेती प्रति एकड़ अधिक पोषण उत्पादित कर रही है अर्थात् भूमि की प्रति इकाई से अधिक स्वास्थ्य लाभ मिल रहा है। हाल ही के जमीनी स्तर पर किये गये आकलन यह दर्शाते हैं कि अपनी बीज रखने वाले, रसायन मुक्त खेती करने वाले पारिस्थितिकी खेती करने वाले व साझा व्यापार करने वाले छोटे–मझोले किसान बाहरी बीजों, रसायनों एवं खेती के अन्य निवेशों हेतु बाजार पर निर्भर करने वाले अपने जैसे अन्य किसानों की तुलना में 5 गुना अधिक आमदनी अर्जित करते हैं। इन छोटे–मझोले किसानों ने बिना बिचौलियों की मदद के स्थानीय खाद्य उत्पादों को शहरों में बेचने हेतु किसान उत्पादक संगठन के माध्यम से उपभोक्ता–उत्पादक के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित किया है। इन संगठनों ने अपने खेतों पर जैव विविधता को बढ़ाया है, जिससे उनकी थाली के भोजन की भी जैव विविधता बढ़ी है, जिससे इनको न केवल पोषण मिल रहा है, वरन् खाद्य सम्प्रभुता भी प्राप्त हो रही है।

एक छोटे से खेत पर मोटे अनाजों की मिश्रित खेती

फ़ोटो : लेखक

फोटो : लेखक

सामुदायिक बैठक

वास्तव में, चाहे वह परती भूमि का सुधार हो अथवा मौजूदा खेती की भूमि की उत्पादकता में वृद्धि हो, विविधीकृत कृषि हो या फिर बाजार आधारित और जलवायु प्रेरित पौधरोपण और स्थानीय नियमों पर जोर दिया जाना हो, एएफपीएसएस मॉडल का प्रत्येक सिद्धान्त खाद्य सम्प्रभुता का आधार है। यह कार्य महिलाओं के समूह द्वारा किया जाता है और उत्पादन, भण्डारण और वितरण सभी स्तरों पर ''स्थानीय'' के उपयोग पर जोर दिया जाता है।

विविध खाद्य प्रणाली को पुनः प्राप्त करना

इन वर्षों में महिला मण्डल के नाम से प्रसिद्ध महिला समूहों ने 65 गाँवों में काम करते हुए 2275 एकड़ बंजर जमीन को खेती लायक बनाया और प्रत्येक ऋतु में एक लाख किग्रा0 अतिरिक्त खाद्य का उत्पादन किया। प्रत्येक गाँव में प्रति एकड़ 40 व्यक्तियों की दर से लगभग 2000 रोजगार दिवसों का सृजन हुआ। साथ ही लगभग 6000 पशुओं को खिलाने के बराबर अतिरिक्त चारा का उत्पादन हुआ। प्रत्येक परिवार में अब 1000 की संख्या में अतिक्रित भोजन है। कुल मिलाकर इसका तात्पर्य यह है कि चारा, आजीविका एवं मजदूरी की आय में वृद्धि हुई है। महिला मण्डल अपने गांवों में खाद्य सम्प्रभुता प्राप्त करने की दिशा में स्वयं भी निरन्तर प्रयास कर रही हैं और आस–पास के गांवों में भी महिलाओं को तैयार कर रही हैं।

> खाना एक मूलभूत मानव अधिकार है। इस अधिकार को केवल उसी प्रणाली में महसूस किया जा सकता है, जहाँ निश्चित तौर पर खाद्य सम्प्रभुता हो।

सानी माझी : एक अनुकरणीय रोल मॉडल

रायगढ़ जिले में काशीपुर तालुका के मालीगाँव गाँव 34 वर्षीय महिला किसान सानी माझी ने प्रकृति की तरफ से मिल रही चुनौतियों से लड़ने का निश्चय किया और आजीविका के स्थाई स्रोतों को प्राप्त किया। वे अपने 1.2 एकड़ खेत में फसलों, मुर्गीपालन, बकरीपालन एवं जानवरों के सही मिश्रण को सुनिश्चित करने के लिए लगभग 5 वर्षों से काम कर रही हैं।

वर्ष 2012 में सानी माझी ने अग्रगामी के स्थाई माडल – पारिस्थितिकी ग्राम विकास के अन्तर्गत अपने एक एकड़ खेत पर एकीकृत खेती प्रणाली को अपनाया। उसे खेत का आकार बदलने हेतु प्रेरित किया गया ताकि पोषण प्रवाह के नेटवर्क को स्थापित करते हुए एक एकीकृत खेती प्रणाली को विकसित किया गया। उन्होंने महसूस किया एक उत्पादक खेत प्राप्त करने के लिए अपने खेत पर जैवविविधीकृत को मजबूत करने की आवश्यकता है, जो आत्म सहायक होगा।

उन्होंने अपने खेत का नियोजन करते समय कृषि–वानिकी का पूरा–पूरा ध्यान रखा और इसी के आधार पर वे अपने खेत के लगभग 25 प्रतिशत हिस्से में अनाज, बाजरा, दाल एवं सब्ज़ियां उगाती हैं जबकि 55 प्रतिशत क्षेत्रफल में उन्होंने फलों का बगीचा बना रखा है। शेष जमीन में से 15 प्रतिशत हिस्से में वे गाय–भैंस, बकरी एवं मुर्गी पालन करते हैं तथा 5 प्रतिशत के रूप में खेत की मेड़ों पर वृक्षों जैसे – नीम, सुबबूल, करंज, बेल, आंवला, नीबू, अनार, बेर आदि का रोपण किया है। माझी ने अपने खेत की मृदा को समृद्ध करने तथा चारा एवं ईंधन की मांग को पूरा करने के लिए इन बारहमासी वृक्षों को लगाया है। अपने खेत की विविधता बढ़ाने के लिए उन्होंने नियमित रूप से मिश्रित खेती, फसल चक्र, फसल संयोजन एवं अन्तः खेती करना प्रारम्भ कर दिया। धीरे–धीरे, सानी माझी पारिस्थितिकी खेती करने लगीं, जिससे उन्हें खाद्य सम्प्रभुता प्राप्त करने में मदद मिली। उन्होंने सामुदायिक बीज / अनाज बैंक में सब्ज़ियों, दालों, मोटे अनाजों, अनाजों की कई प्रजातियों के बीजों को भी सुरक्षित किया है। इन बीजों का उपयोग गाँव वालों द्वारा प्रतिवर्ष किया जाता है।

वह कहती हैं, ''अब मैं अपने परिवार की एक कमाऊ सदस्य हूँ।'' वे अपनी आमदनी का कुछ भाग बच्चों की पढ़ाई पर खर्च करती हैं और कुछ आमदनी बचा भी रही हैं। परिवार की निर्णय लेने की प्रक्रिया में भी उनकी सहभागिता हो रही है। सानी माझी अब अपने स्वतंत्र अस्तित्व को महसूस करने लगी हैं।

निष्कर्ष

उड़ीसा के दक्षिणी–पश्चिमी जिलों में आदिवासी समुदायों ने अपनी आजीविका प्रणाली विकसित की है, जिसमें अनाज, बाजरा, दालों, तिलहन, कन्द एवं फलों की खेती शामिल है। परिवार के एक एकड़ खेत पर विविधीकृत खेती करने से न केवल उनकी खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित हो रही है, वरन् उन्हें खाद्य सम्प्रभुता प्राप्त करने की दिशा में एक कदम बढ़ाने में भी सहायक है। इसके अतिरिक्त इसने सूखे के समय में भी आजीविका और खाद्य सुरक्षा का एक सुरक्षित तरीका उपलब्ध कराया है। हस्तान्तरित खेती, जो कभी खेती का एक रूप थी, अब मिश्रित खेती के रूप में पारिस्थितिकी तंत्र के साथ सामंजस्य स्थापित कर चुकी है। इस क्षेत्र के कोंध, जोदिया एवं परजा आदिवासी समुदाय अब आत्म निर्भर एवं स्वतंत्र हो गये हैं।

आदिवासी किसानों ने यह सिद्ध कर दिया है कि खाद्य उत्पादन करने वालों का पूरा ध्यान रखे बगैर खाद्य सुरक्षा नहीं हासिल की जा सकती है। उनके योगदान को नजर अन्दाज कर की गयी कोई भी चर्चा गरीबी और भूख को मिटाने में असफल होगी। भोजन एक मूलभूत मानव अधिकार है। इस अधिकार को केवल एक प्रणाली में ही महसूस किया जा सकता है, जहां खाद्य सम्प्रभुता की गारण्टी है।

■

कुलास्वामी जगन्नाथ जेना
परियोजना समन्वयक
अग्रगामी, काशीपुर, रायगढ़
ओडिशा, भारत– 765 015
ईमेल : kulaswami13@gmail.com

Millet Farming Systems
LEISA INDIA, Vol. 19, No.3, Sept. 2017